



## मानसिक स्वास्थ्य संकट: आधुनिक भारतीय समाज की अनदेखी चुनौती

ममता सिरमौर वर्मा, पीएच-डी, समाजशास्त्र अध्ययन शाला  
पंडित रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

### ORIGINAL ARTICLE



#### Author

ममता सिरमौर वर्मा, पीएच-डी  
E-mail : mamtanarendraverma@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 03/04/2026  
Revised on : 04/06/2026  
Accepted on : 13/06/2026  
Overall Similarity : 00% on 05/06/2026



#### Plagiarism Checker X - Report

Originality Assessment

**0%**

Overall Similarity

Date: Jun 5, 2026 (02:54 PM)  
Matches: 0 / 4023 words  
Sources: 0

Remarks: No similarity found,  
your document looks healthy.

Verify Report:  
Scan this QR Code



### शोध सार

भारत जैसे देश में, जहाँ मन को वश में करना धार्मिक पुण्य माना जाता है और मनोचिकित्सक के पास जाना सामाजिक कलंक। वहाँ मानसिक स्वास्थ्य की चर्चा करना एक सांस्कृतिक साहस का काम है। विश्व स्वास्थ्य संगठन (2023) के अनुसार भारत में 197 मिलियन से अधिक व्यक्ति मानसिक विकारों से ग्रस्त हैं तथापि इनमें से 80 प्रतिशत से अधिक को अपने जीवनकाल में कभी कोई उपचार नहीं मिलता। यह उपचार-अंतराल केवल स्वास्थ्य-तंत्र की असफलता नहीं है, यह उस सामाजिक संरचना की गहरी नाकामी है जो पीड़ा को अदृश्य बनाए रखने में निहित स्वार्थ रखती है। प्रस्तुत शोधपत्र इस बहुस्तरीय संकट का समाजशास्त्रीय एवं अंतर्विषयक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। गॉफमैन के कलंक-सिद्धांत, पार्सन्स के बीमार-भूमिका सिद्धांत, फूको के सत्ता-ज्ञान विश्लेषण तथा दुर्खाइम के सामाजिक एकीकरण की अवधारणा को आधार बनाकर यह अध्ययन उन संरचनात्मक कारणों की पड़ताल करता है जो मानसिक पीड़ा को व्यापक बनाते हैं और उसके उपचार को असंभव-सा बना देते हैं। राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण (2016), राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (2022), विश्व स्वास्थ्य संगठन, राष्ट्रीय नशा मुक्ति उपचार केंद्र (एनडीडीटीसी) एवं संसदीय स्थायी समिति के आँकड़ों के आधार पर यह शोध सिद्ध करता है कि मानसिक स्वास्थ्य का संकट वर्ग, जाति, लिंग एवं भूगोल के अंतर्विरोधों का जीता-जागता दर्पण है और इसका समाधान चिकित्सकीय हस्तक्षेप से पहले सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूपांतरण में निहित है।

### मुख्य शब्द

मानसिक स्वास्थ्य, सामाजिक कलंक, उपचार-अंतराल, आत्महत्या, डिजिटल अवसाद, मनोसामाजिक पुनर्वास।

### प्रस्तावना

किसी भी समाज की परिपक्वता को इस एक कसौटी से परखा जा सकता है। वह अपने सबसे कमज़ोर, सबसे पीड़ित और सबसे अकेले नागरिक के साथ कैसा व्यवहार

करता है? मानसिक स्वास्थ्य के प्रश्न पर भारतीय समाज इस परीक्षा में अभी तक बुरी तरह विफल रहा है। यहाँ जो व्यक्ति हड्डी तुड़वाकर आता है उसे सहानुभूति मिलती है; परंतु जो महीनों से बिस्तर से उठने की शक्ति नहीं जुटा पाता, जिसका मन निरंतर अँधेरे में डूबा रहता है, जो रात को चिंता से काँपता रहता है उसे समाज कहता है: “ज्यादा मत सोचो”, “भगवान पर भरोसा रखो”, “कमजोर हो क्या?” यह विरोधाभास शारीरिक एवं मानसिक पीड़ा के प्रति हमारी समझ और सहानुभूति की असमानता भारत में मानसिक स्वास्थ्य संकट का सबसे केन्द्रीय आयाम है।

राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण-2016 के अनुसार भारत में प्रत्येक पाँच व्यक्तियों में से एक को अपने जीवनकाल में किसी मानसिक विकार का सामना करना पड़ता है। इसके बावजूद केंद्र सरकार के स्वास्थ्य बजट का मात्र 0.05 प्रतिशत मानसिक स्वास्थ्य पर व्यय होता है, तुलना के लिए यह कुल स्वास्थ्य व्यय के दो प्रतिशत के छब्बीसवें हिस्से से भी कम है। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (2022) की रिपोर्ट यह बताती है कि उस वर्ष 1,70,924 व्यक्तियों ने आत्महत्या की यह स्वतंत्र भारत का सर्वाधिक वार्षिक आत्महत्या का आँकड़ा है। इन संख्याओं के पीछे असंख्य व्यक्तिगत त्रासदियाँ हैं जिन्हें “व्यक्तिगत दुर्भाग्य” कहकर खारिज कर देना एक गंभीर समाजशास्त्रीय भूल होगी।

इस संकट की एक विशेष विडंबना यह है कि भारत जैसे-जैसे आर्थिक समृद्धि की ओर बढ़ रहा है, उसके नागरिकों का मानसिक स्वास्थ्य उसी अनुपात में क्षीण होता प्रतीत होता है। शहरीकरण की उत्तेजना, उपभोक्तावाद की असीमित इच्छाएँ, परंपरागत सामाजिक सुरक्षा-जाल का टूटना और डिजिटल प्रौद्योगिकी की उस “आभासी सामाजिकता” का उभार जिसमें व्यक्ति भीड़ में भी एकाकी है ये सब मिलकर एक ऐसा सामाजिक-मनोवैज्ञानिक परिदृश्य बना रहे हैं जो असाधारण रूप से विषाक्त है।

मिशेल फूको (1961) ने अपनी ऐतिहासिक दृष्टि से यह स्थापित किया था कि “पागलपन” की अवधारणा का जन्म चिकित्सकीय तथ्य से नहीं बल्कि समाज की सत्ता-संरचनाओं की आवश्यकताओं से हुआ है। भारत में मानसिक विकार को जिस तरह धार्मिक अपराध, कुलकलंक, वंशानुगत दोष या नैतिक पतन के रूप में परिभाषित किया जाता है वह इसी सत्ता-प्रक्रिया का एक स्थानीय, सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट संस्करण है। यह दृष्टि न केवल पीड़ित को उपचार से वंचित करती है, बल्कि उसे उसकी पीड़ा का स्वयं अपराधी भी बना देती है जो एक गहरी मनोवैज्ञानिक क्रूरता है।

प्रस्तुत शोधपत्र इन बहुस्तरीय जटिलताओं को समाजशास्त्रीय लेंस से परखने का प्रयास करता है। इसका मूल तर्क यह है, भारत में मानसिक स्वास्थ्य का संकट न केवल एक जैव-चिकित्सकीय समस्या है न केवल एक नीतिगत विफलता यह एक गहरी सामाजिक-सांस्कृतिक समस्या है जिसकी जड़ें उस सामूहिक मानसिकता में हैं जो कमजोरी को स्वीकारना नहीं जानती, पीड़ा को दृश्य होने देने से डरती है।

## शोध उद्देश्य

प्रस्तुत शोधपत्र के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं:

1. भारत में प्रमुख मानसिक विकारों के प्रसार, वितरण एवं जनसांख्यिकीय प्रवृत्तियों का समाजशास्त्रीय दृष्टि से विवेचनात्मक विश्लेषण करना।
2. मानसिक स्वास्थ्य उपचार की राह में विद्यमान सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक एवं संस्थागत बाधाओं की व्यवस्थित पहचान एवं गहन विवेचना करना।
3. शहरीकरण, उपभोक्तावाद, शैक्षणिक-व्यावसायिक दबाव तथा डिजिटल प्रौद्योगिकी के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभावों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना।
4. गॉफमैन, पार्सन्स, फूको एवं दुर्खाइम के सैद्धांतिक प्रारूपों को भारतीय सामाजिक यथार्थ के संदर्भ में परखते हुए उनकी व्याख्यात्मक उपयोगिता एवं सीमाओं का परीक्षण करना।
5. लिंग, जाति, वर्ग एवं भौगोलिक स्थिति के आधार पर मानसिक स्वास्थ्य की विभेदीकृत वास्तविकताओं को उजागर करना।
6. मानसिक स्वास्थ्य नीति, सामुदायिक हस्तक्षेप एवं सांस्कृतिक परिवर्तन की दिशा में ठोस एवं साक्ष्य-आधारित सुझाव प्रस्तावित करना।

## शोधपत्र का महत्व

प्रस्तुत अध्ययन की प्रासंगिकता कई परस्पर संबद्ध स्तरों पर है। सैद्धांतिक स्तर पर यह शोध पाश्चात्य समाजशास्त्रीय अवधारणाओं की भारतीय संदर्भ में परीक्षण करता है। गॉफमैन (1963) का कलंक-सिद्धांत, पार्सन्स (1951) की “बीमार भूमिका” की अवधारणा, और फूको (1961) का सत्ता-ज्ञान विश्लेषण, ये तीनों पाश्चात्य ऐतिहासिक अनुभव से उद्भूत हैं। भारतीय समाज में जाति, धर्म, लिंग-भेद और सामूहिकता के विशिष्ट स्वरूपों के साथ ये सिद्धांत कहाँ तक उपयोगी हैं और कहाँ इनकी सीमाएँ हैं यह प्रश्न “स्वास्थ्य समाजशास्त्र” (Health Sociology) के भारतीय अनुशासन को समृद्ध करने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

व्यावहारिक स्तर पर यह अध्ययन उन नीति-निर्माताओं के लिए उपयोगी है जो मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 के प्रभावी क्रियान्वयन, “आयुष्मान भारत” में मानसिक स्वास्थ्य की पूर्ण एकीकरण, एवं सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रमों की रूपरेखा विकसित करना चाहते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) (2022) ने यह आंकलन किया है कि मानसिक विकारों के कारण भारत को प्रतिवर्ष लगभग 1.03 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर की आर्थिक हानि होती है, यह अकेला आँकड़ा मानसिक स्वास्थ्य में निवेश को आर्थिक विवेक का मामला सिद्ध कर देता है, परंतु यह शोधपत्र यह भी रेखांकित करता है कि मानसिक स्वास्थ्य में निवेश का औचित्य केवल आर्थिक उत्पादकता नहीं होना चाहिए यह मानवीय गरिमा और सामाजिक न्याय का प्रश्न है।

सांस्कृतिक स्तर पर यह अध्ययन उस सामूहिक मानसिकता को चुनौती देता है जो “मन की बीमारी” को अवास्तविक मानती है। “मजबूत रहो”, “सब ठीक हो जाएगा”, “परिवार में ऐसी बातें नहीं होतीं” ये सांस्कृतिक संदेश पीड़ित व्यक्ति को उसकी पीड़ा की वैधता से वंचित करते हैं। इस मानसिकता के सामाजिक-ऐतिहासिक स्रोतों की पड़ताल करना और यह तर्क देना कि इसे बदलना किसी नीतिगत हस्तक्षेप से भी अधिक आवश्यक है, यह इस शोध का एक विशिष्ट योगदान है।

## अनुसंधान पद्धति

प्रस्तुत शोध वर्णनात्मक-विश्लेषणात्मक (Descriptive-Analytical) प्रविधि पर आधारित है जिसमें गुणात्मक एवं मात्रात्मक दोनों प्रकार के द्वितीयक आँकड़ों का उपयोग किया गया है। द्वितीयक आँकड़ों का चुनाव इसलिए किया गया क्योंकि मानसिक स्वास्थ्य एक अत्यंत संवेदनशील विषय है। प्राथमिक साक्षात्कार के लिए विशेष नैतिक अनुमोदन, प्रशिक्षित परामर्श-सहायता एवं दीर्घकालिक क्षेत्र-सर्वेक्षण की आवश्यकता होती है जो इस शोध के वर्तमान परिसर में संभव नहीं था साथ ही, उपलब्ध राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय सर्वेक्षणों की बहुलता इस विश्लेषण को पर्याप्त अनुभवजन्य आधार प्रदान करती है।

संस्थागत स्रोतों में राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण-2016 (निमहान्स, बंगलुरु), राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की “भारत में दुर्घटनात्मक मृत्यु एवं आत्महत्या” की वार्षिक रिपोर्टें, राष्ट्रीय नशा-मुक्ति उपचार केंद्र (राष्ट्रीय नशा मुक्ति उपचार केंद्र (एनडीडीटीसी) का मादक द्रव्य उपयोग सर्वेक्षण-2019, विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की मेंटल हेल्थ एटलस (2022) एवं वर्ल्ड मेंटल हेल्थ रिपोर्ट (2023), केंद्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय के वार्षिक बजट दस्तावेज़ तथा स्वास्थ्य संबंधी संसदीय स्थायी समिति की प्रतिवेदनें सम्मिलित हैं।

सैद्धांतिक विश्लेषण के लिए चार प्रमुख समाजशास्त्रीय परंपराओं को वैचारिक कसौटी के रूप में प्रयुक्त किया गया है: संरचनात्मक-प्रकार्यवाद (पार्सन्स), प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद (गॉफमैन), उत्तर-संरचनावाद (फूको) एवं सामाजिक एकीकरण का सिद्धांत (दुर्खाइम)। इस अध्ययन की एक महत्व यह है कि राष्ट्रीय सर्वेक्षणों में ग्रामीण क्षेत्रों के अनौपचारिक एवं अनुपचारित मामले प्रायः पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं पाते जिसका अर्थ है कि वास्तविक उपचार-अंतराल इन आँकड़ों से भी कहीं अधिक गहरा है।

## ऑकड़ों का वर्गीकरण, सारणीकरण एवं विश्लेषण

### सारणी 1: भारत में प्रमुख मानसिक विकारों का प्रसार एवं स्थिति (2016–2023)

| विकार                 | अनुमानित पीड़ित | प्रसार दर      | स्रोत                                                | विशेष संकेतक                                       |
|-----------------------|-----------------|----------------|------------------------------------------------------|----------------------------------------------------|
| अवसाद (Depression)    | 56.7 मिलियन+    | 4.5%           | राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण, 2016           | महिलाओं में 1.5× अधिक; ग्रामीण-शहरी अंतर उल्लेखनीय |
| चिंता-विकार (Anxiety) | 38.4 मिलियन+    | 3.0%           | विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), 2023                    | शहरी युवाओं में सर्वाधिक वृद्धि दर                 |
| गंभीर मनोविकृति       | 10–12 मिलियन    | 0.9%           | राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण, 2016           | उपचार-अंतराल 70–80%; ग्रामीण में अत्यंत गहरा       |
| मादक द्रव्य व्यसन     | 22.9 मिलियन     | 1.8%           | राष्ट्रीय नशा मुक्ति उपचार केंद्र (एनडीडीटीसी), 2019 | पुरुषों में 3× अधिक; किशोरों में नई प्रवृत्ति      |
| आत्महत्या (वार्षिक)   | 1,70,924 मृत्यु | 12.4 प्रति लाख | राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो, 2022                 | 15–29 वर्ष: मृत्यु का प्रमुख कारण                  |
| समस्त मानसिक विकार    | 197 मिलियन+     | 14.3%          | विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO), 2023                    | 80%+ मामले जीवन भर अनुपचारित रहते हैं              |

[स्रोत: राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण, (2016), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) मेंटल हेल्थ रिपोर्ट (2023), राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (2022), राष्ट्रीय नशा मुक्ति उपचार केंद्र (एनडीडीटीसी) (2019) के संकलित ऑकड़ों]

**जनसांख्यिकीय यथार्थ:** संख्याओं के पीछे की कथा, सारणी 1 स्वयं में एक मार्मिक कथा कहती है। 197 मिलियन पीड़ित व्यक्तियों की यह संख्या ब्राजील की कुल जनसंख्या से भी अधिक है और यह केवल निदान किए गए अथवा अनुमानित मामले हैं। इस संख्या की गहराई को समझने के लिए यह स्मरण रखना आवश्यक है कि मानसिक रोग का कलंक इतना गहरा है कि अनेक पीड़ित कभी किसी से अपनी पीड़ा साझा ही नहीं करते वे चुप रहते हैं, सहते हैं और धीरे-धीरे टूट जाते हैं। 15–29 वर्ष का युवा आयु वर्ग जो देश की सर्वाधिक उत्पादक शक्ति है, आत्महत्या की दृष्टि से सर्वाधिक संवेदनशील है, यह केवल एक जनसांख्यिकीय तथ्य नहीं, यह एक सामाजिक त्रासदी की घोषणा है।

**अवसाद एवं लिंग:** एक संरचनात्मक असमानतारु अवसाद के मामलों में महिलाओं की अनुपातहीन उपस्थिति पुरुषों की तुलना में 1.5 गुना अधिक जैविक नियति नहीं है। यह पितृसत्तात्मक सामाजिक संरचना का मनोवैज्ञानिक प्रतिफल है। घरेलू हिंसा जिसे भारत में अभी भी प्रायः “पारिवारिक मामला” कहकर टाला जाता है, अवैतनिक गृहकार्य का असीमित बोझ, विवाह एवं प्रजनन संबंधी पारिवारिक दबाव, सामाजिक गतिशीलता की बाधाएँ ये सब मिलकर एक “सामाजिक रूप से निर्मित अवसाद” उत्पन्न करते हैं। सिमोन द बोवुआर (1949) के इस कथन को यहाँ याद करना प्रासंगिक है: “स्त्री पैदा नहीं होती, बनाई जाती है” और इस “निर्माण” की कीमत अक्सर उसका मानसिक स्वास्थ्य चुकाता है।

**किसान-आत्महत्या:** नीतिगत विफलता का मानवीय मूल्य, राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (2022) के अनुसार उस वर्ष 11,290 किसानों एवं खेतिहर मजदूरों ने अपना जीवन समाप्त किया। महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, कर्नाटक और आंध्रप्रदेश में इनकी सर्वाधिक संख्या है वही राज्य जहाँ कृषि-ऋण, सूखा और बाजार-मूल्य की अनिश्चितता सबसे अधिक है। इन आत्महत्याओं को “व्यक्तिगत कमजोरी” कहना एक ऐसा सरलीकरण है जो न केवल तथ्यात्मक रूप से गलत है बल्कि नैतिक दृष्टि से भी अपराधिक है। ये मौतें उस व्यापक कृषि-नीतिगत असफलता का मानवीय मूल्य हैं जिसमें किसान का जीवन-मूल्य मंडी में उसकी फसल के भाव से निर्धारित होने लगा है।

सारणी 2: मानसिक स्वास्थ्य उपचार की राह में विद्यमान प्रमुख बाधाएँ

| बाधा का प्रकार          | स्वरूप एवं अभिव्यक्ति                                | प्रत्यक्ष परिणाम                                     | साक्ष्य/संकेत                                                               |
|-------------------------|------------------------------------------------------|------------------------------------------------------|-----------------------------------------------------------------------------|
| सामाजिक कलंक            | 'पागलपन' से जोड़कर देखना;<br>पारिवारिक लज्जा         | परिवार उपचार छुपाता है;<br>रोगी अकेला पड़ता है       | 80%+ मामले उपचार<br>विहीन — राष्ट्रीय मानसिक<br>स्वास्थ्य सर्वेक्षण, 2016   |
| आर्थिक अवरोध            | निजी परामर्श ₹1,500–3,000<br>प्रति सत्र              | निम्न-मध्यम वर्ग की पहुँच<br>व्यावहारिक रूप से शून्य | सार्वजनिक सेवाओं में महीनों<br>की प्रतीक्षा सूची                            |
| मानव-संसाधन अभाव        | मनोचिकित्सक: 0.3 प्रति 1 लाख<br>जनसंख्या             | ग्रामीण क्षेत्र में विशेषज्ञ<br>अनुपस्थित            | विश्व स्वास्थ्य संगठन<br>(WHO) न्यूनतम मानक: 3<br>प्रति 1 लाख               |
| सांस्कृतिक-धार्मिक बाधा | ईश्वरीय दंड, पूर्वजन्म का फल<br>मानना                | ओझा, तांत्रिक उपायों पर<br>भरोसा; देरी से उपचार      | विशेषतः ग्रामीण, बुजुर्ग एवं<br>अशिक्षित जनसंख्या                           |
| लैंगिक कलंक             | पुरुषों में 'कमज़ोरी' की सांस्कृतिक<br>अवधारणा       | पुरुष सहायता नहीं माँगते;<br>मौन पीड़ा               | पुरुष आत्महत्या दर: महिला<br>से 2× — राष्ट्रीय अपराध<br>रिकॉर्ड ब्यूरो 2022 |
| नीतिगत शिथिलता          | स्वास्थ्य बजट का केवल 0.05%<br>मानसिक स्वास्थ्य हेतु | अधिनियम प्रभावशाली,<br>क्रियान्वयन अपर्याप्त         | राज्य प्राधिकरण प्रायः<br>निष्क्रिय — संसदीय समिति,<br>2021                 |

[स्रोत: राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य सर्वेक्षण, (2016), विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) मेंटल हेल्थ एटलस (2022), निमहान्स शोध एवं संसदीय स्थायी समिति प्रतिवेदन (2021) का संश्लेषण]

**कलंक:** उपचार का सबसे शक्तिशाली शत्रु, सारणी 2 में प्रस्तुत बाधाओं में सामाजिक कलंक सर्वाधिक व्यापक एवं गहरी जड़ें रखता है। गॉफमैन (1963) ने कलंक को एक “विकृत पहचान” (Spoiled Identity) के रूप में परिभाषित किया था जो व्यक्ति को उसके समग्र मानवीय मूल्य से वंचित कर देती है। भारत में यह कलंक व्यक्ति तक सीमित नहीं रहता यह पूरे परिवार, उसकी विवाह-योग्यता, उसके कुल की “इज्जत” और उसकी आजीविका तक को ग्रसित कर लेता है। यही कारण है कि जब परिवार में कोई मानसिक रूप से बीमार पड़ता है तो पहली प्रतिक्रिया उसकी मदद करना नहीं, बल्कि उसकी बीमारी छुपाना होती है। इस प्रकार कलंक की संस्कृति पीड़ित को दोहरी सज़ा देती है पहले बीमारी, फिर चुप्पी।

**मानव-संसाधन का संरचनात्मक संकट:** भारत में प्रति 1,00,000 जनसंख्या पर केवल 0.3 मनोचिकित्सक हैं जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) का न्यूनतम मानक 3 प्रति 1,00,000 है अर्थात् दस गुना अधिक। देश में कुल मनोचिकित्सकों की संख्या लगभग 4,000–5,000 के बीच है और इनमें से 80 प्रतिशत महानगरों में केंद्रित हैं। ग्रामीण भारत जहाँ देश की लगभग 65 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है, में विशेषज्ञ का मिलना एक असाधारण घटना है। यह असमान भौगोलिक वितरण केवल प्रशिक्षण-अभाव का परिणाम नहीं है; यह उस व्यापक सामाजिक प्राथमिकता का प्रतिबिम्ब है जो शहरी, संपन्न एवं उच्च-वर्गीय नागरिकों को ही “उपचार के अधिकारी” मानती है।

**डिजिटल युग और मानसिक स्वास्थ्य:** एक नवीन असुरक्षा, पिछले एक दशक में सोशल मीडिया ने भारतीय मानसिक स्वास्थ्य परिदृश्य में एक नया और जटिल आयाम जोड़ा है। इंस्टाग्राम, यूट्यूब तथा अन्य डिजिटल मंचों पर “परफेक्ट जीवन” की अविरोध धारा जो वास्तव में सावधानीपूर्वक संपादित कल्पना है। युवाओं में जो “सामाजिक तुलना” उत्पन्न करती है वह फेस्टिंगर (1954) के सिद्धांत को एक नई, तीव्र प्रासंगिकता देती है। जब एक औसत युवा प्रतिदिन 6–8 घंटे उन “आदर्श जीवन” की छवियाँ देखता है जो वास्तव में कभी अस्तित्व में नहीं थीं और उनसे अपनी वास्तविकता की तुलना करता है तो जो दीर्घकालिक निम्न-आत्मसम्मान एवं चिंता-विकार उत्पन्न होता है उसका नाम आज हमारे पास नहीं है, क्योंकि समाज ने अभी इसे “बीमारी” मानने से इनकार कर रखा है।

**जाति, दलित मनोआघात और उपेक्षित शोध:** भारत में जाति-भेदभाव एवं मानसिक स्वास्थ्य का अंतर्संबंध समाजशास्त्रीय एवं मनोचिकित्सकीय, दोनों प्रकार के साहित्य में गंभीर रूप से उपेक्षित रहा है। सार्वजनिक अपमान, शारीरिक हिंसा, आर्थिक शोषण और सामाजिक बहिष्कार के दीर्घकालिक अनुभव जो दलित एवं आदिवासी समुदायों के जीवन की नियमित वास्तविकता हैं। एक प्रकार का “सांस्थानिक मनोआघात” (Structural Psychic Trauma) उत्पन्न करते हैं। इस आघात की न तो समाज में पहचान है न चिकित्सकीय साहित्य में पर्याप्त स्थान है। यह शोध-रिक्तता स्वयं में एक सामाजिक अन्याय है।

### समाजशास्त्रीय सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य

भारत में मानसिक स्वास्थ्य की जटिल वास्तविकता को चार प्रमुख समाजशास्त्रीय परंपराओं के आलोक में समझा जा सकता है। ये परंपराएँ एक-दूसरे की पूरक हैं और प्रत्येक इस परिघटना के एक भिन्न, अपरिहार्य आयाम को प्रकाशित करती है।

**पार्सन्स और बीमार भूमिका सिद्धांत:** टॉलकॉट पार्सन्स (1951) ने “बीमार भूमिका” (Sick Role) की अवधारणा में यह बताया था कि बीमार व्यक्ति को समाज में एक विशेष दर्जा मिलता है। वह सामान्य सामाजिक दायित्वों से अस्थायी मुक्ति पाता है और बदले में स्वस्थ होने का प्रयास करने की जिम्मेदारी स्वीकार करता है। शारीरिक रोग में यह सामाजिक समझौता काम करता है, परंतु मानसिक रोग में समाज यह “बीमार भूमिका” देने से ही मना कर देता है। “पागल” को न बीमार माना जाता है, न उसकी सहायता की जाती है। उसे “झामेबाज़”, “आलसी” या “ईश्वर के कोप का भागी” कहा जाता है। यह सैद्धांतिक अनुपस्थिति जब समाज बीमार भूमिका देने से ही इनकार करे मानसिक स्वास्थ्य के कलंक की मूल संरचना है।

**गॉफमैन और कलंक की राजनीति:** एर्विंग गॉफमैन (1963) ने कलंक को एक ऐसी “विशेषता” के रूप में परिभाषित किया जो व्यक्ति को “पूर्ण” से “अपवित्र” की श्रेणी में धकेल देती है। भारतीय सामाजिक जीवन में यह कलंक “पारिवारिक कलंक” का रूप लेता है। एक व्यक्ति की मानसिक बीमारी पूरे कुल की “इज्जत” के लिए खतरा बन जाती है। अपने “नाट्य सिद्धांत” (Dramaturgical Theory) के आलोक में देखें तो मानसिक रोगी के परिवार की “मंचीय प्रस्तुति” इस बात पर केंद्रित होती है कि बाहर की दुनिया को दिखाया जाए कि “सब ठीक है, घर में सब सामान्य हैं” भले ही पर्दे के पीछे कोई अकेले टूट रहा हो।

**फूको और सत्ता-ज्ञान का विश्लेषण:** मिशेल फूको (1961) का यह तर्क कि “पागलपन” एक चिकित्सकीय तथ्य नहीं बल्कि एक सामाजिक-ऐतिहासिक निर्माण है, भारतीय संदर्भ में विशेष रूप से तीखा है। जो व्यक्ति जाति-व्यवस्था को सार्वजनिक रूप से चुनौती दे, जो महिला पितृसत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठाए, जो युवा शिक्षा-व्यवस्था की प्रतिस्पर्धा से थककर टूट जाए इन सबको “पागल” कहना एक राजनीतिक कार्य है। यह निदान “असामान्य” व्यवहार को जो वास्तव में दमनकारी संरचनाओं के विरुद्ध एक उचित प्रतिक्रिया हो सकती है रोग की श्रेणी में रखकर नियंत्रित करने का उपकरण बन जाता है। फूको की दृष्टि से, मनोचिकित्सा संस्था भी सत्ता की एक भुजा हो सकती है।

**दुर्खाइम और आत्महत्या का समाजशास्त्र:** दुर्खाइम (1897) ने अपनी महाकृति में यह सिद्ध किया था कि आत्महत्या एक व्यक्तिगत चुनाव नहीं, बल्कि एक “सामाजिक तथ्य” (Social Fact) है। यह सामाजिक एकीकरण की दृढ़ता या शिथिलता से निर्धारित होती है। “अनोमिक आत्महत्या” जो सामाजिक नियमों के विघटन एवं लक्ष्यों-साधनों के असंतुलन से जन्म लेती है। आज के भारत में विशेष रूप से प्रासंगिक है। परीक्षा में असफल युवाओं की, कर्ज से दबे किसानों की और पारिवारिक दबाव से टूटी महिलाओं की आत्महत्याएँ ये सभी दुर्खाइम के “सामाजिक एकीकरण की विफलता” के समकालीन भारतीय रूप हैं। इन मौतों की जिम्मेदारी व्यक्ति पर नहीं, उन सामाजिक संरचनाओं पर है जिन्होंने इन व्यक्तियों को इस अंधकार तक पहुँचाया।

### निष्कर्ष

इस शोध का केन्द्रीय निष्कर्ष एक वाक्य में कहा जा सकता है; भारत में मानसिक स्वास्थ्य संकट न तो आकस्मिक है, न अपरिहार्य। यह उन सामाजिक-सांस्कृतिक संरचनाओं का तार्किक एवं पूर्वानुमानित परिणाम है जो पीड़ा को छुपाने, कमजोरी को लज्जा मानने और सहायता माँगने को नैतिक पराजय समझने पर टिकी हैं। जब तक इन संरचनाओं को परिवार, विद्यालय, मीडिया, धर्म एवं राज्य के स्तर पर सचेत रूप से चुनौती नहीं दी जाती, तब तक कितने भी अस्पताल बनें और कितने भी क़ानून पारित हों उपचार-अंतराल वैसा का वैसा बना रहेगा।

यह अध्ययन यह भी स्थापित करता है कि पार्सन्स, गॉफमैन, फूको और दुर्खाइम की अवधारणाएँ भारतीय संदर्भ में न केवल प्रासंगिक हैं, बल्कि इनकी व्याख्यात्मक शक्ति पाश्चात्य संदर्भ से भी अधिक तीव्र है। भारत में जाति, धर्म, लिंग और

सामूहिकता की परतें इन प्रक्रियाओं को और अधिक जटिल बनाती हैं। लिंग-विश्लेषण दर्शाता है कि पितृसत्तात्मक संरचना एक साथ महिलाओं को अवसाद की ओर धकेलती है और पुरुषों को सहायता माँगने से रोकती है। इस प्रकार यह दोनों दिशाओं में क्षति करती है।

## सुझाव

इस विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित साक्ष्य-आधारित सुझाव प्रस्तावित हैं:

1. राष्ट्रीय मानसिक स्वास्थ्य बजट को तत्काल प्रभाव से कुल स्वास्थ्य बजट के कम-से-कम 2 प्रतिशत तक ले जाया जाए। आयुष्मान भारत-प्रधानमंत्री जन आरोग्य योजना के अंतर्गत मानसिक स्वास्थ्य उपचार को पूर्ण एवं असीमित कवरेज प्रदान की जाए।
2. प्रत्येक सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (CHC) पर कम-से-कम एक प्रशिक्षित मानसिक स्वास्थ्य परामर्शदाता अनिवार्यतः नियुक्त किया जाए। आशा एवं आँगनबाड़ी कार्यकर्ताओं को मानसिक स्वास्थ्य की प्राथमिक पहचान एवं रेफरल हेतु व्यापक एवं नियमित प्रशिक्षण दिया जाए।
3. विद्यालयीन एवं महाविद्यालयीन पाठ्यक्रम में “भावनात्मक साक्षरता, मानसिक स्वास्थ्य एवं सहायता माँगना” विषय को अनिवार्य रूप से सम्मिलित किया जाए। प्रत्येक शैक्षणिक संस्थान में एक प्रशिक्षित परामर्शदाता की नियुक्ति वैधानिक रूप से अनिवार्य की जाए।
4. मानसिक स्वास्थ्य देखभाल अधिनियम, 2017 के अंतर्गत स्थापित राज्य मानसिक स्वास्थ्य प्राधिकरणों को सक्रिय, संसाधन-युक्त एवं जवाबदेह बनाया जाए। अधिनियम के क्रियान्वयन की वार्षिक संसदीय समीक्षा अनिवार्य की जाए।
5. जाति-भेदभाव, घरेलू हिंसा एवं कृषि-ऋण जैसे संरचनात्मक कारकों को मानसिक स्वास्थ्य नीति का अभिन्न घटक माना जाए। मानसिक स्वास्थ्य केवल “उपचार की समस्या” नहीं, “सामाजिक न्याय की समस्या” है।
6. मीडिया एवं सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों के लिए आत्महत्या की रिपोर्टिंग हेतु विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के दिशा-निर्देशों का पालन वैधानिक रूप से अनिवार्य किया जाए। मानसिक स्वास्थ्य के सकारात्मक एवं गैर-कलंकित प्रस्तुतीकरण को प्रोत्साहन दिया जाए।
7. स्थानीय भाषाओं में मानसिक स्वास्थ्य सामग्री एवं हेल्पलाइन सेवाओं का विकास किया जाए। टेलीमेडिसिन आधारित मानसिक स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार दूरस्थ ग्रामीण क्षेत्रों तक किया जाए।

मानसिक स्वास्थ्य की यह लड़ाई अकेले सरकारी योजनाओं और अस्पतालों की संख्या से नहीं जीती जाएगी। यह लड़ाई उस दिन जीती जाएगी जब एक पिता अपने बेटे से कह पाएगा; “रोना ठीक है”; जब एक शिक्षक अंकों से पहले विद्यार्थी का मन पूछेगा; जब एक नियोक्ता “मानसिक स्वास्थ्य दिवस की छुट्टी” को बुखार की छुट्टी के बराबर वैधता देगा। यह सांस्कृतिक परिवर्तन किसी विधेयक से नहीं आता। यह तब आता है जब हम एक समाज के रूप में यह स्वीकार करने का साहस जुटाते हैं कि मन की पीड़ा, तन की पीड़ा जितनी ही वास्तविक है, और उतनी ही सहानुभूति, उतनी ही गंभीरता की अधिकारी है।

## संदर्भ सूची

1. Agrawal, S. & Mehta, N. (2022) Social media use and mental health among urban Indian youth: Patterns and correlates. *Indian Journal of Psychology*, 44(3), 234–251.
2. American Psychological Association. (2023) *Social media use and its impact on adolescent mental health*. APA, 750 First Street, NE, Washington, USA.
3. de Beauvoir, S. (2010) *The second sex* (C. Borde & S. Malovany-Chevallier, Trans.) Vintage Books, New York, USA. (Original work published 1949)
4. Durkheim, E. (1951) *Suicide: A study in sociology* (J. A. Spaulding & G. Simpson, Trans.) The Free Press, Glencoe, USA. (Original work published 1897)
5. Festinger, L. (1954) A theory of social comparison processes. *Human Relations*, 7(2), 117–140. <https://doi.org/10.1177/001872675400700202>
6. Foucault, M. (1988) *Madness and civilization: A history of insanity in the age of reason* (R. Howard, Trans.) Vintage Books, New York, USA. (Original French work published 1961)

7. Goffman, E. (1963) *Stigma: Notes on the management of spoiled identity*. Prentice-Hall, Englewood Cliffs, USA.
8. Gupta, D. & Sharma, P. (2021) Mental health in Dalit communities: An overlooked dimension of social inequality. *Sociological Bulletin*, 70(2), 178–196.
9. Kapoor, R. L. (2004) *Psychiatry in India: History, current trends and challenges*. National Book Trust, New Delhi.
10. Ministry of Health & Family Welfare. (2017) *Mental Healthcare Act, 2017*. Government of India, New Delhi.
11. National Crime Records Bureau (2023) *Accidental deaths & suicides in India 2022*. Ministry of Home Affairs, Government of India, New Delhi, India. Retrieved from <https://www.ncrb.gov.in>, Accessed on 02/06/2025.
12. National Drug Dependence Treatment Centre (NDDTC) (2019) *Magnitude of substance use in India 2019*. Ministry of Social Justice & Empowerment, Government of India, New Delhi.
13. NIMHANS. (2016) *National Mental Health Survey of India 2015–16: Prevalence, patterns and outcomes*. Supported by Ministry of Health & Family Welfare, Government of India, NIMHANS Publication No. 129, Bengaluru.
14. Parliamentary Standing Committee on Health and Family Welfare. (2021) *224th report: Shortage of medical professionals and implementation of Mental Healthcare Act, 2017*. Rajya Sabha Secretariat, New Delhi.
15. Parsons, T. (1951) *The social system*. The Free Press, Glencoe, USA.
16. Patel, V.; Xiao, S.; Chen, H.; Hanna, F.; Jotheeswaran, A. T.; Luo, D.; Parikh, R.; Sharma, E.; Usmani, S.; Yu, Y.; Druss, B. G. & Saxena, S. (2016) The magnitude of and health system responses to the mental health treatment gap in adults in India and China. *The Lancet*, 388(10063), 3074–3084. [https://doi.org/10.1016/S0140-6736\(16\)00160-4](https://doi.org/10.1016/S0140-6736(16)00160-4)
17. Rao, T. S. S.; Asha, M. R.; Rajesh, B. & Jagannatha Rao, K. S. (2017) Mental health in India: Time to move beyond the treatment gap. *Indian Journal of Psychiatry*, 59(1), 1–4. [https://doi.org/10.4103/ijp.IJP\\_133\\_17](https://doi.org/10.4103/ijp.IJP_133_17)
18. Saxena, S. (Ed.) (2016) *Mental health care in India: Issues and concerns*. Oxford University Press, New Delhi.
19. Sharma, K., & Verma, R. (2023) Farmer suicides in India: A psychosocial analysis of causes and contexts. *Journal of Rural Studies*, 18(1), 45–63.
20. Singh, O. P. (2022) Mental health policy in India: Promises, gaps and the road ahead. *Indian Journal of Psychiatry*, 64(5), 423–431. [https://doi.org/10.4103/ijp.ijp\\_556\\_22](https://doi.org/10.4103/ijp.ijp_556_22)
21. World Bank. (2021) *Out of the shadows: Making mental health a global development priority*. World Bank Publications, Washington, USA.
22. World Health Organization. (2022) *Mental health atlas 2021*. WHO, 20 Avenue Appia, 1211 Geneva 27, Switzerland.
23. World Health Organization. (2023) *World mental health report: Transforming mental health for all*. WHO, Geneva, Switzerland.

\*\*\*\*\*